सम्पादक के नाम

नसीर भाई, तुम चुप करवा दिए जाने के बावजूद शाह हो

नसीर भाई, एक शेर है -

हवा महक उठी रंग-ए-चमन बदलने लगा,
वो मेरे सामने जब पैरहन बदलने लगा।
बहम हुए हैं तो अब गुफ़्तुगू नहीं होती,
बयान-ए-हाल में तर्ज़-ए-सुख़न बदलने लगा।
लेकिन अगर पैरहन भर बदले तो तर्ज़-ए-सुख़न कैसे बदलेगा?

भारत में लोकतंत्र तो है, लेकिन महज दस-बीस डिग्री का। अभी उसे 60 डिग्री तक विस्तार देना, बहुतेरे चक्रव्यूहों को लांघना है। देश या प्रदेश में जब भी सत्ता परिवर्तन होता है तो उसके हर्फ़ नई खुशबू की सियाही से लिखे होते हैं, लेकिन राजनेता चुनावी वादे भूल जाते हैं और इस सियाही को सुखा देते हैं। अक्सर ही ये खुशबू देने वाले ये हर्फ़ नागरिकों को गर्दिश में ले जा पटकते हैं और लोगों को गुस्सा आते देर नहीं लगती।

प्रदेश में वैसे तो सरकार कांग्रेस की आई है, लेकिन अजमेर में प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता नसीरुद्दीन शाह के साथ जो कुछ हुआ, उसे देखकर आप नहीं कह सकते कि राज्य में राजनीतिक विचार का परिवर्तन हुआ है। नसीरुद्दीन शाह को जिन लोगों ने बोलने और साहित्योत्सव में शामिल होने से जिस तरह रोका और स्थानीय प्रशासन और पुलिस के लोग जिस तरह असहाय बने रहे, उसे देखकर तो लगता है कि ऐसे तत्वों के प्रति एक प्रवेशद्वार खुल गया है। आखिर मंदिर-मंदिर माथा नवाने का कुछ असर तो होना ही था। लेकिन एक बात साफ़ है कि नसीर की आवाज़ को विरोधियों ने वहां तक पहुंचा दिया है, जिसे वे साहित्योत्सव का उद्घाटन करके नहीं पहुंचा सकते थे। भस्म-असुर अपने डर से भले शिव को छिपने पर विवश कर दे, लेकिन उसका विसर्जन उसकी अपनी ही हठी बुद्धि से होता है।

आप एक लम्हे के लिए उस घटनाक्रम को याद कीजिए जब प्रदेश में अशोक गहलोत पहली बार मुख्यमंत्री बने थे और अजमेर में विहिप नेता प्रवीण भाई तोगड़िया त्रिशूल बांटने आए थे। गहलोत ने उन्हें तब जेल में डाल दिया था और तोगड़िया बाद में एक लंबे कालखंड तक राजस्थान आना भूल गए थे। शायद ऐसे ही हालात के लिए पाक़ शायरा परवीन शाक़िर ने लिखा था -इक हिजाब-ए-तह-ए-इक़रार है माने वर्ना, गुल को मालूम है क्या दस्त-ए-सबा चाहता है। यानी स्थानीय प्रशासन वाले गुल को मालूम है कि सरकार का दस्ते-सबा क्या चाहता है। शायद उन्हें लोकसभा चुनाव की चिंता है और इस चिंता में यह उम्मीद है कि भाजपा के कट्टरवादी कांग्रेस के नए सनातन धर्मी अवतार को नमन करेंगे।

सरकार की ख़ामोशी सिर्फ़ ख़ामोशी नहीं होती। उसके कई रंग होते हैं। ये रंग समय-समय पर ज़ाहिर और उजागर होने से रहते नहीं। लोकतंत्र का कोई मतलब नहीं है अगर नीतियां और परिस्थितियां वही की वही रहें तो। लोकतंत्र में नागरिकों, कलाकारों और अभिव्यक्तियों में जीने वाले लोगों के स्वातंत्र्य से जुड़ी आवाज़ों पर पहरा बैठा रहे और सत्तासीन लोग अगर चुप्पियां साधे रहें तो यह लोकनीति के तो विरुद्ध तो है ही, यह परिवर्तन जगाने वाली उम्मीदों पर भी कुहासा डालना है। इसका मतलब यही है कि लोक समाज रात के अंधेरे को ही अपना मुकद्दर मान ले, क्योंकि हमारे बादशाह के हाथों में कोई दीया नहीं है। अगर शासकों के पास दीया नहीं है तो उनसे बेहतर जुगनू हैं। बिना दीए वाले शासकों के पास सिर्फ़ गर्दिश रहती है। और जहां गर्दिश होती है, उस बज़्म में बताओ आप बैठना चाहोगे?

इसलिए नसीरुद्दीन तुम चुप करवा दिए जाने के बावजूद शाह हो; लेकिन जो सियासत के शाहंशाह हैं, वे वाणी की रक्षा न कर पाएं तो समस्त शक्तियों के बावजूद लोकतंत्र के बीजूके भर हैं।

- त्रिभुवन

डराने वाले के बजाय डरने वाले से सवाल पूछने वाला ये मीडिया अजब है

मीडिया चिल्ला रहा था, जिन लोगों ने स्टार बनाया, जिन लोगों ने उनकी फिल्में देखीं वहां नसीरुद्दीन को डर लग रहा है। अब उस मीडिया को देखना चाहिए कि जिन लोगों से नसीरुद्दीन डर रहे थे, उन्होंने उस डर को पक्का कर दिया है। नसीरुद्दीन को जो फील हुआ था उसे ही तो ज़ाहिर किया था।

जब हमें भूख लगती है तो क्या यह कहना चाहिए कि मुझे भूख नहीं लगी? जब प्यास लगती है तो क्या पानी पीकर प्यास बुझाने के बजाय मैं पाकिस्तान चला जाऊं? अगर भूखे को खाना खिलाकर भूख मिटाई जा सकती है। प्यासे की प्यास पानी पिलाकर बुझाई जा सकती है, तो क्या जिसे डर लग रहा है उसको यकीन दिलाकर डर नहीं निकाला जा सकता?

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मीडिया उनको 卐गैंग卐 में शामिल बताने लगा। वैसा ही गैंग जैसे लिंचिंग का विरोध करने पर अवॉर्ड वापस करने वालों का बना दिया गया था। उनको प्रोजेक्ट कर दिया गया था कि ये गैंग है।

अजीब मीडिया है। सवाल डरने वालों से पूछ रहा है। डराने वालों से नहीं।

ये तो वही बात हुई कि जिसका क़त्ल हुआ, उससे पूछा जाए कि बताओ तुम क़त्ल क्यों हुए? तुम तो इस शहर में पले बढ़े थे, काफी लोग तुम्हें चाहते भी थे तो बताओ क्यों हुए क़त्ल? पाकिस्तान क्यों नहीं चले गए?

सवाल सत्ता में बैठे लोगों से होना चाहिए था। सवाल कानून के रखवालों से होना चाहिए था। सवाल मीडिया को खुद से करना चाहिए था। क्यों शाम होते ही धर्म पर संकट के पैकेज चलाने लगता है। क्यों लोगों की मूलभूत जरूरतों को नजर अंदाज करके धार्मिक बहसें दिखाता है। क्यों मंदिर मस्जिद चिल्लाता है। नेताओं को सत्ता चाहिए और तुम्हें टीआरपी।

न्यूज चैनलों की बहसें सिर्फ हिन्दू मुस्लिम में सिमट कर रह गई हैं, जिन लोगों से अपने घर नहीं चलते वो चार-पांच हज़ार रुपए की दिहाड़ी पर ज्ञान बघारते हैं। वो बे सिर पैर की बातें करके।

देखिए आपने नसीरुद्दीन को अपने पैकेजों में कैसे प्रोजेक्ट कर दिया कि परेशानी पर बात ना करके लोग उनसे नफ़रत करने लगे हैं। उन्हें पाकिस्तान भेजने की तैयारी करने लगे हैं।

तुम अपनी पीठ थपथपाना कि तुमने अपना काम शानदार तरीके से किया है। अब तुम हैरान भी मत होना अगर किसी दिन नसीरुद्दीन को अपना डर ज़ाहिर करने से उन पर हमला भी हो जाए।

आपने जनता को जागरूक कर दिया कि नसीरुद्दीन के साथ क्या करना है। अगर यकीन ना आए तो आर्काइव में जाकर अपने पैकेज की भाषा फिर से सुनना कि तुम लोगों ने नसीरुद्दीन की कैसी छवि बनाकर पेश की है। उनके डर को और बढ़ा दिया है।

-मोहम्मद असगर

अन्याय की पराकाष्ठा- जबरा मारे रोने न दे!

परवेज़ आलम

यह कहावत मैंने बचपन से अब तक सिर्फ़ सुनी थी, देखी कभी नही थी! मगर पिछले कुछ सालों से ये कहावत देश के मुसलमानों पर फिट बैठ रही है।

हिन्दू समुदाय के एक हिस्से में इतनी अराजकता और इतना वहशीपन पहले कभी नहीं देखा था जो अब देखने को मिल रहा है। मुसलमानों, दलितों, कम्युनिस्टों और इनकी साम्प्रदायिक सोच से असहमति व्यक्त करने वाले निष्पक्ष हिन्दू बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और विद्वानों तक की हत्याएं हो रही हैं। असहमति की हर आवाज़ को ख़ामोश किया जा रहा है।

देश तरक्की की तरफ़ बढ़ने की जगह दिन-ब-दिन गर्त में जा रहा है जिसकी वजह सरकारों का ढीलापन और जनता का निकम्मापन है। देश में गाय के नाम पर आए दिन हत्याएं हो रही हैं और इन हत्यारों को सरकारी संरक्षण प्राप्त है।

देश के इन्हीं हालातों से खौफ़ज़दा होकर अगर आमिर ख़ान और नसीरुद्दीन शाह डर का इज़्हार कर देते हैं तो यही वहशी लोग उसे पाकिस्तान जाने की सलाह देते हैं और कुछ तो इससे भी आगे बढ़कर नसीरुद्दीन शाह के घर पाकिस्तान का टिकट भी भेज देते हैं!

आखिर ये कौन लोग हैं जो बार-बार देश के मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने की सलाह और धमकी देते रहते हैं? क्या इन लोगों ने पाकिस्तान में प्लाट ख़रीद रखे हैं? क्या पाकिस्तान इनके बाप का मुल्क़ है? क्या इनकी माँ को पाकिस्तान दहेज़ में मिला था जो ये बार बार पाकिस्तान-पाकिस्तान गाते रहते हैं?

इसी ज़हरीले समाज ने डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर, प्रोफ़ेसर कुलबुर्गी, कॉमरेड गोविंद पानसरे और गौरी लंकेश जैसे बुद्धिजीवियों की हत्या की है। इन्ही ज़हरीले साँपों ने हाल ही में बुलंदशहर में इंस्पेक्टर सुबोध कुमार को भी मौत के घाट उतारा है। जो इस ज़हरीले समाज की सोच से अलग सोच रखेगा वो मारा जाएगा चाहे वो हिन्दू हो या मुसलमान!

देश का प्रधानमंत्री होकर नरेन्द्र मोदी खुद भी अपनी जान को ख़तरा बता चुका है लेकिन उसके बयान पर किसी ने उसे पाकिस्तान भेजने की बात नहीं की और न ही उसका टिकट कटवाया गया। हिन्दू हृदय सम्राट कहलाने वाले विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष प्रवीण तोगड़िया ने मीडिया के सामने रो-रो कर अपनी जान को हिंदुत्ववादियों से (न कि मुसलमानों से) ख़तरा बताया लेकिन किसी ने उसे पाकिस्तान भेजने की बात नहीं की। इन गोबर अंध भक्तों ने मोदी या तोगड़िया से क्यों नहीं कहा कि अगर तुम्हारी जान को ख़तरा है तो नेपाल चले जाओ या किसी दूसरे देश में चले जाओ जहाँ ख़तरा नहीं है?

इनके दिमाग़ में मुसलमानों के लिए नफ़रत भरी जा चुकी है। मुकेश अम्बानी की पत्नी को भारी सुरक्षा क्यों दी गयी अगर उसकी जान को ख़तरा नहीं है? कितना हास्यास्पद लगता है जब भारत की आज़ादी के आन्दोलन में भाग न लेने वाले अँग्रेज़ों के मुख़बिर देशभक्ति की बाते करते दिखाई देते हैं!!

आखिर क्यों मुसलमान के मुँह से निकली हर बात ज़हरीले समाज को नागवार गुज़रती है जो हत्या भी करता रहेगा और रोने भी नही देगा! ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओगे तो कहेगा मुसलमान सबसे सुरक्षित भारत मे हैं फिर भी गद्दारी कर रहे हैं जैसे ये मुल्क़ न होकर इनके बाप की जागीर हो!

जनसंपर्क मशीन पर सवार मोदी!

जनसंपर्क की मशीन पर सवार व्यक्ति की मुश्किल यह है कि उसके नाम पर यदि कोई पदबंध चल निकला तो वह फिर उसके साथ अपना प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण कर लेता है। पीएम अनेक हुए हैं, लेकिन जनसंपर्क मशीन पर सवार पीएम एक ही हुआ है वह है नरेन्द्र मोदी। वे जब तक रहेंगे उनके बारे में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ उनके साथ जुड़ा रहेगा और उन्होंने जो अर्थ दिया है वह उस शब्द के असल अर्थ को खा जाएगा। जनसंपर्क मशीन शब्दों के अर्थ नष्ट करती है, नए अर्थ,नए रुपक और नए बिम्ब पैदा करती है। मसलन, हाल ही में प्रयुक्त साइकोपैथ, विकास, भक्त, काला धन, आरएसएस आदि का अर्थ अब वही नहीं रह गया है जो मूलरुप में इनके साथ जुड़ा है। यह भी कह सकते हैं कि मोदीजी ने शब्दों के अर्थ के अंत की गंगा प्रवाहित की है। इसी तरह उनका सबसे बड़ा योगदान है धर्मनिरपेक्ष पदबंध को अर्थहीन बनाना।

मोदी का मीडिया जादू गायब हो चुका है,हर चैनल पर करप्शन जिंदाबाद के नारे लग रहे हैं,टॉक शो करप्शन छा गया है,विकास गायब है। भारत में इस समय दो तरह की जनता है एक वह जनता है जिसे जनसंपर्क एजेंसियों,आरएसएस और मीडिया ने मिलकर बनाया है और दूसरी कोटि में वह जनता है जो जीवनानुभवों में तप रही है असल में इन दो किस्म की जनता में तीखी जंग है। संघ-मीडिया की जनता नायकपूजा और प्रतिक्रियावादी राजनीतिक लक्ष्यों के प्रति वचनवद्ध है यह "निर्मित जनता" है, यह वह जनता है जो मीडियातंत्र में रोज अभिव्यक्त हो रही है। इस जनता के पास सामाजिक सरोकारों का लक्ष्य नहीं है बल्कि यह छोटे छोटे निहित स्वार्थों को ही जीवन के बडे लक्ष्य मानती है, इसके लिए वस्तुओं के वितरण के सवाल प्रमुख हैं, मसलन, महंगाई मुख्य समस्या है, किसान की उपज के दाम और बिक्री के सवाल प्रमुख नहीं हैं।

यह वह जनता है जिसके मन में दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के प्रति गहरी घृणा भरी है, मजदूरों किसानों के संगठनों और विचारधारा से यह नफरत करती है। यह जनता मोदी की देन नहीं है वह तो स्वयं इस जनता का उत्पाद हैं,बाई प्रोडक्ट हैं।असल में इस जनता को विगत सत्तर साल के आर्थिक विकास ने पैदा किया है। कांग्रेस लंबे समय तक इस जनता का दोहन करती रही है कालांतर में आरएसएस ने इस जनता की सेवा करने का प्रण कर लिया तो अब 1990-91 से यह जनता आरएसएस के वैचारिकतंत्र में क्रमशः खिसकती जा रही है। इस जनता को मिलिटेंसी और अधिनायकवाद पसंद है।यही वजह है कि इस जनता को इंदिरा गांधी पसंद थी।

जनता-जनता कहकर जनता को देवता न बनाओ,जनता के मिथ को तोड़ो,क्रिटिकल नजरिया पैदा करो, जनता को अंधभक्तों की तरह न देखो और न उस पर बातें करो।जनता के प्रति अंधभक्ति और दृष्टिहीन नजरिया अंततः जनता में छिपे अवैज्ञानिक और अविवेकवादी तत्वों को सामने नहीं आने देता।जनता का मतलब जाति या कास्ट नहीं है। वह ठोस हाड़ मांस की जनता है, उसकी दैनंदिन आदतें हैं, संस्कार हैं, रिवाज हैं,मूल्य हैं,आप उनमें खरोच पैदा किए बिना जनता को उदघाटित नहीं कर सकते। मेरा नेता और नेता की जनता इस फ्रेम के बाहर निकलकर जनता के प्रति आलोचनात्मक नजरिया पैदा करो।जनता के प्रति पूजाभाव बंद करो।

फासिज्म का आधार है जनता के प्रति पूजाभाव। बाजार से लेकर टीवी तक सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का कब्जा है और हम बोगस होकर हिंदुत्व की हिमायत में लगे हैं। हिंदुत्व असल में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की राजनीतिक शाखा है। उनका पूरा गिरोह सक्रिय है, ये वे ही लोग हैं जब भाजपा सरकार नहीं होती तो दंगे करते हैं, जब राज्य में भाजपा सरकार होती है तो घृणा और हिंसाचार का कार्य व्यापार करते हैं! ये स्थाई गिरोह हैं! इन गिरोहों में बेकार युवाओं से लेकर पेशेवर गुंडे तक शामिल हैं।

पीआर कल्चर के असर के कारण हम लगातार झूठ बोलते हैं, उसमें ही जीते हैं, सेल्फ-इमेज में रहते हैं, लेकिन बाहर झांककर देखने को तैयार नहीं हैं।पीएम मोदी ने सेल्फ इमेज की कैद को और भी पुख्ता बनाया है। वे तो सेल्फ इमेज के महानायक हैं।सेल्फ इमेज में जीना मनुष्यत्व का अंत है। हमारे समाज की मुश्किल यह है कि सब कुछ नैतिक-अनैतिक में आकर खत्म हो जाता है। विश्लेषण-विवेचन वक्तृता के ये सबसे खराब पदबंध हैं लेकिन हम खुश हैं इन पदबंधों में जीकर।

दूसरी ओर हमारे नेतागण राष्ट्र-राष्ट्र की जितनी गुहार लगा रहे हैं यह सब ढोंग है, नाटक है, राष्ट्र को तो बहुत पहले अमेरिकन संस्कृति सफाचट हजम कर चुकी है। वे अमेरिकन संस्कृति पर बातें नहीं करते, बल्कि आए दिन उसकी प्रशंसा में कसीदे पढ़ते रहते हैं। जबकि वह अपराध की संस्कृति है। अपराध की संस्कृति ने भय की संस्कृति पैदा की है हिंदुत्व, पृथकतावाद और आतंकवाद तो उसकी राजनीतिक अभिव्यक्ति हैं। इस प्रक्रिया में लोकतंत्र को हत्यातंत्र में तब्दील कर दिया गया है।

घर में बहू-बेटियों की हत्या, घर के बाहर लवजेहाद के नाम पर हत्या, हेट कैम्पेन के नाम पर हत्या,भगवान के नाम पर हत्या, जाति के नाम पर हत्या,गुंडागर्दी के नाम पर हत्या, किसानों और मजदूरों की अभाव और कर्ज के बहाने हत्या आदि के व्यापक फलक को देखकर तो यही लगता है कि लोकतंत्र को हत्यातंत्र कहना समीचीन होगा। निर्दोष लोगों की जितने बड़े पैमाने पर भारत में हत्याएं होती हैं उतनी हत्याएं शायद किसी अन्य लोकतांत्रिक देश में नहीं होतीं। मानवबलि से लेकर पशुबलि तक पूरा हत्या का फलक फैला हुआ है। इसके बाद भी हम दावा करते हैं कि हम अहिंसा के पुजारी हैं। यही है जनसंपर्क कला का कमाल कि वह सच को महसूस करने नहीं देती,सच देखकर भी बेखबर बने रहते हैं।

- साइबर नजर